UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182361
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 S595 Accession No. H4049

Author सिंह, रमा.

Title समुद्रफेन. 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below.

समुद्रफेन

कु० रमा सिंह

उदयन-प्रकाशन

प्रथम संस्करण—१९५७ ई०

मूल्य : तीन रुपए

सर्वाधिकार लेखिका के आधीन

वितरक—
नवयुग पुस्तक भण्डार
अमीनुद्दौला पार्क
लखनऊ

प्रकाशक—उदयन प्रकाशन
सिहलॉज, हसनगंज, लखनऊ
मुद्रक—मदन मोहन शुक्ल 'मदनेश'
साहित्य-मन्दिर प्रेस प्रा० लिमिटेड, लखनऊ

अनुक्रम

कविताएँ		पृष्ठ संख्या
समुद्रफेन	:	९
वशीकरण	:	१०
कंचन-मृग	:	११
उदासी	:	१२
अनुत्तरता	:	१३
आशंका	:	१४
अज्ञात की उलझन	:	१५
निमंत्रण	:	१६
मोड़	:	१८
अभाव	:	१९
धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे	:	२०
मुक्तक	:	२१
ज़िन्दगी का सफ़र	:	२२
परिभाषा	:	२४
तटस्थता	:	२६
विश्लेषण	:	२७
कर्म-बन्धन	:	२८
ऊपर टूटा तारा	:	३०
घरौंदे	:	३१
एक दिन रत और बीता	:	३२
साल बीतने पर	:	३४
परिणति	:	३६
कसौटी	:	३७
मडगार्ड	:	३८

गायक से	:	३९
मनमानी गैल	:	४०
मैं गान हूँ	:	४१
बोझिल आँखें	:	४२
एक मनः स्थिति	:	४३
सभी मिट्टी के खिलौने	:	४४
मुक्तक	:	४६
सूनी गलियाँ	:	४७
नया पल	:	४८
प्रशस्ति काव्य	:	५०
विनम्र निवेदन	:	५२
पानी के बादल	:	५३
इन्द्र-धनुष	:	५५
काई	:	५६
ज्योति की चाह	:	५७
मुक्तक	:	५८
दो ग्राम्य गीत—१		५९
—२	:	६०
सुरमई वेला	:	६१
छलना	:	६३
समर्पण	:	६५
प्रेरणा-गीत	:	६७
अपेक्षा	:	६९
गहरा अँधेरा समय का	.	७०
रुलाई	.	७२
शान्ति	.	७३
[illegible]	:	७४
एक चतुष्पदी	.	७५
आग्रह	:	७६

उन दिवङ्गत आत्माओं को जिन्होंने अध्ययन
को प्रेरणा और चिन्तन को दिशा दी

स्व० कृष्णा जिज्जी

स्व० विमला पुरी

व

स्व० कमला शर्मा को

समुद्रफेन

समुद्र फेन

बात सच है सिन्धु को अब तक न कोई थाह पाया,
है न गोता-खोर जिसने ढूंढ रत्नों को चुकाया?
है बहुत गहरा, बड़ा सम्पन्न, विस्तृत भी बहुत है—
यह समुद्री फेन लेकिन व्यंग बनकर उभर आया।
थी कमी वह कौन, जिसने मथ दिया लहरें उठाई
एक छोटा प्रश्न यह गहराइयों को नाप लाया।

वशीकरण

नियति की बीन धरे ओंठों पर
समय का सँपेरा यह
कैसी धुन बजाता है,
फूँकता है प्राण-वायु रन्ध्रों में
अपने सिद्ध कौशल से
स्वरों को उठाता है, गिराता है
लय में मिलाता है, ताल पर चलाता है
समाँ बँध जाता है;
नागिन सी धरती यह
झूम झूम जाती है,
स्वर की लहरियों पर
बेहद बल खाती है,
समय का सँपेरा भी
अपने ही रागों में बेसुध है, खोया है,
स्वर के इस टोने में
चेतन ही सोया है;
कैसा यह वशीकरण
कैसी तन्मयता है?
नागिन भी झूमती
सँपेरा भी झूमता है।

कंचन-मृग

सुख का यह कंचन-मृग
छलता है, छलता है।
मन का धनुर्द्धर यह—
हाथ ले कुटिल कमान,
तनी डोर पर
धरे नुकीले बान
पीछे पीछे उसके ही चलता है, चलता है।
चमकीला स्वर्ण-चर्म पाने को मचलता है।
मन ने जब पीछा किया
उस मृग-छौने का,
होने का क्षण था वह
कुछ अनहोने का
तभी—तभी
शान्ति सहचरी हरी गई;
तभी से समाई
यह विषम विकलता है।
सुख का यह कंचन-मृग
छलता है, छलता है।

उदासी

फैला है अन्धकार
रात यह अमावस की
दृष्टि को सहारा देने
किरन नहीं फूटेगी--
इसलिए उदास हूँ।

ज्योति का उजाला है
पूर्णिमा की रात यह
चन्द्रमा की पूर्णता पर
कल से ही टूटेगी--
इसलिये उदास हूं।

अनुत्तरता

सांझ आई, चुप हुये धरती गगन
नयन में गोधूलि के बादल उठे
बोझ से पलकें झँपी नम हो गईं
        सांझ ने पूछा, उदासी किसलिये ?
        किन्तु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं।
रात आई, कालिमा घिरती गई
सघन तम में द्वार मन के खुल गये
दाह की चिनगारियाँ हँसने लगी
        रात ने पूछा, जलन यह किसलिये ?
        किन्तु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं।
नींद आई, चेतना सब मौन है
देह थक कर सो गई पर प्राण को
स्वप्न की जादू भरी गलियाँ मिलीं
        नींद ने पूछा, भुलावे किस लिये ?
        किन्तु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं।
प्रश्न तो बिखरे यहाँ हर ओर हैं
किन्तु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं।

आशंका

माटी के खिलौने यह सुन्दर हैं
किन्तु यह टूटेंगे
किस तरह बचाऊँ उन्हें ?

फूलों के गुच्छे बहुत मनहर हैं
किन्तु मुरझायेंगे
किस तरह सजाऊँ उन्हें ?

तने हुये मन के तार सस्वर हैं
राग पर डूबेंगे
किस तरह उठाऊँ उन्हें ?

कहते सभी बंधन क्षणभंगुर हैं
बहुत यह रूठेंगे
किस तरह निभाऊँ उन्हें ?

अज्ञात की उलझन

कुछ दिन बीते धीरे धीरे
अनबीते जो दिन शेष रहे
उनसे यह मन घबराता है ।

इतना सारा पथ नाप लिया
अनचला पन्थ जो शेष किन्तु
वह मन बोझिल कर जाता है ।

स्वर साधा गाये गीत कई
अनगाया कोई गीत मगर
भीतर भीतर उफनाता है ।

नयनों ने देखे चित्र बहुत
अनदेखा कोई चित्र किन्तु
बन बन कर मिटता जाता है ।

जीवन के [illegible] में [illegible]
सपनों का कोई जादूगर
कितना टोना फैलाता है ?

निमंत्रण

जगमगाते हैं नखत
नीले गगन पर ।
हँस रहे हैं कर रहे
क्रीड़ा अनोखी ।
फेंक कर निज किरण धागे—
व्योम से तारे असंख्य बुला रहे हैं ।
दूर से अनगिन निमंत्रण आ रहे हैं ।

सिन्धु की जलराशि में
लहरें मचलतीं ।
चपल गति से वे तटों
से हैं उलझती ।
खींचने निज ओर मानो
सिन्धु के यह मौन इंगित आ रहे हैं ।
दूर से अनगिन निमंत्रण आ रहे हैं ।

नयन सीमित है क्षितिज
की कालिमा में ।
सृष्टि को घेरे हुये
यह एक रेखा ?
क्षितिज के उस पार क्या है ?

देखने को यह नयन अकुला रहे हैं।
दूर से अनगिन निमंत्रण आ रहे हैं।

फूल दो दिन विहँस क्यों
अस्तित्व खोता ?
कोष अपना सब लुटा
क्यों मेघ मिटता ?
कौन सी अज्ञात दिशि में
श्वास के सब तार खिंचते जा रहे हैं।
दूर से अनगिन निमंत्रण आ रहे हैं।

मोड़

बहुत ही मोड़ पैना है
ज़रा रफ्तार को धीमी करो
तब मोड़ना गाड़ी,
कहीं ऐसा न हो
उलटो यहाँ
सब लोग तुमको व्यर्थ में कह दें अनाड़ी ।
बहुत संभव, कहें यह भी–
कि तुम ख़फ्तुलहवासी में चलाते थे
पिये ताड़ी ।
इसी से संभल कर मोड़ो
ज़रा देखो
कहाँ खन्दक, कहां पर्वत, कहाँ खाड़ी?

अभाव

गायक ! तुम कुछ खोज रहे हो,
पता नहीं क्या खोया ?
राग तुम्हारे हुये बेसुरे
एक तार जो सोया ।

× × ×

तार और सब ज्यों के त्यों हैं
फिर भी गीत न फूटे,
उँगली की मिज़राब हारती
एक तार यदि टूटे ।

× × ×

जीवन की वीना में भी तो
कितने तार कसे हैं ?
टूटा है जो तार उसी में
स्वर सारे उलझे हैं ।

धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे

जीवन का धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र
लड़ना अविराम यहाँ,
पक्ष औ' विपक्ष में
अपने ही बान्धव हैं
जिनसे संग्राम यहाँ;
अपनी ही दुर्बलता
मन को कँपाती है,
हाथों से पैनी प्रत्यञ्चा यह
छूट छूट जाती है,
मन में असमञ्जस का
कुहरा यह फैला है,
आँखों को डुबाता-सा
रङ्ग यह धुमैला है,
    ऐसी कुबेला में
    टूटते-से साहस के
    सारथि हों कृष्ण
    तो पराजय का भय क्या ?

मुक्तक

दिन हुआ, यह ताप की किरणें रहीं
रात में यह ओस की लड़ियाँ वहीं
घूम-फिर कर बस यही क्रम चल रहा–
जल रहे दिन और रातें गल रहीं।

कभी लगता यह अजब संसार है
आज जो अनमोल, कल निस्सार है
भाव तो चढ़ता–उतरता है यहाँ
एक यह चलता हुआ बाजार है।

यह धरा परदेश, अपना देश क्या?
फिर यहाँ पर वैर क्या विद्वेष क्या?
व्यर्थ है आकांक्षा के व्यूह ये–
बाद में कुछ भी रहेगा शेष क्या?

यह सफ़र है, भीड़ है, बेहद घुटन,
दूर के गन्तव्य की मन में लगन,
बोल लो दो बोल आपस में यहाँ–
बहुत संभव, इसी में डूबे थकन।

ज़िन्दगी का सफ़र

ज़िन्दगी का सफ़र, चल रहा क़ाफ़िला।

राह लम्बी बहुत
शूल कितने बिछे
किन्तु चलना बहुत
और चल भी रहे

हर नये मोड़ पर बढ़ रहा फ़ासला।

कुछ कहानी कही
कुछ कहानी सुनी
आप बीती कही
आप बीती सुनी

कुछ सहारा लिया, कुछ दिया हौसला।

गुनगुनाई कहीं
प्रार्थना की कड़ी
क्योंकि विश्वास की
थी ज़रूरत बड़ी

गूँज पीछे छुटी, गीत आगे चला।

साँझ आती घिरी
और सहमी ज़मीं
पैर थे थक गये
आँख भी थक गई

रोशनी थक गई, सूर्य अपना ढला।

स्वप्न देखे बहुत

बात सोची बहुत

रङ्ग ऐसे भरे

चित्र मनहर बना

नींव थी ही कहाँ ; ढह गया वह क़िला।

ज़िन्दगी का सफ़र, चल रहा काफ़िला।

परिभाषा

अकेलापन, अकेलापन, अकेलापन
यही है ठीक शायद
ज़िन्दगी की एक परिभाषा।

सही है, राह में चलते बटोही साथ के—
ढाढस बँधाते हैं,
मगर कुछ मोड़ ऐसे है
कि सहसा हाथ से वे हाथ बरबस छूट जाते हैं।
अकेलापन, अकेलापन, अकेलापन
यही है ठीक शायद
ज़िन्दगी की एक परिभाषा।

झुलसते गगन पर मनभावनी
घिरती घटाएँ जो सघन होकर,
उन्हें हर ओर छितराती
उड़ाती है बड़ी ही क्रूरता से वायु की ठोकर।
अकेलापन, अकेलापन, अकेलापन
यही है ठीक शायद
ज़िन्दगी की एक परिभाषा।

यहाँ का मोह-ममता से भरा आँगन
मगन यह सांस की पुतली,

मगर कब साथ दे पाते, सगे-स्नेही
बुलाती जब किसी अज्ञात की उँगली ?
अकेलापन, अकेलापन, अकेलापन
यही है ठीक शायद
ज़िन्दगी की एक परिभाषा ।

तटस्थता

सिन्धु के विस्तार को नौका
कभी तो नाप आती है,
चपल लहरों के हिडोले में
वहुत वह डगमगाती है।

लहर की रँगरेलियों के वीच
में वह उलझकर वहती,
भँवर के आवर्त में पड़कर
कभी वह सतह में ढहती।

नाव डूवी वीच में या
दूसरा तट छोर छू आई,
सिन्धु की सम्पूर्णता में पर
न कोई भी कमी आई।

विश्लेषण

जीवन में जो कुछ भी पाया है
मिला यहाँ जो कुछ भी
लगता है ऐसे, जैसे
वह अनचाहा है।

जीवन में जो भी कुछ मिला नहीं
अभाव जो बना रहा
उसकी क्या बात कहें
वह अनथाहा है।

फिर भी यह सच है
जो भी कुछ अपना है
उसमें विरक्ति कहाँ ?
और जो विरागता है
सारी अनुरक्ति वहाँ।

कर्म बंधन

जन्म है वह एक ऋण
जो हम चुकाते ज़िन्दगी भर हैं
उतरता है तभी शायद
हमारी सांस की गिन्ती जहाँ पर खत्म होतीहै।
न जाने कब लिया था
वह महाजन कौन था
जिसने दिया था ?
कौन बैठा टाँकता अपना बहीखाता ?
कौन बैठा हँस रहा है सूद सब खाता ?
सुरक्षित मूलधन सारा बनाये है।

हमारी देह गलती है
हमारी उम्र ढलती है
न जाने किस अदेखे चक्र की यह गति
हमें हर बार छलती है।

विपम यह चक्र है ऋण का
कि हरदम सूद बढ़ता है।
चुकाते यदि इधर थोड़ा
उधर वह और चढ़ता है।
उठाये भार कोल्हू का
मनुज के वृपभ कंधे हैं।

बँधाये आँख पर पट्टी
जुटा वह काम धंधे में।

हमारे कर्ज़ का लेखा
कभी लिखता नहीं है दूसरा कोई,
हमी ने डाल दी गुत्थी कि
जिसमें ख़ुद हमारी सांस ही खोई।

हमारी ही कलम कागज़ तथा
दावात स्याही थी,
हमीं लिखते रहे बैठे
जहाँ जो पंक्ति चाही थी।

हमी ने थे चुने अक्षर
हमीं को अर्थ देना है,
हमारी ही तराज़ू है
हमीं को मोल लेना है।

न कोई ऋण दिया करता
न कोई ऋण लिया करता
हमारे कर्म का बंधन
हमें बन्दी किया करता

हमीं ख़ुद हैं ऋणी अपने
हमी ख़ुद हैं महाजन भी।

ऊपर टूटा तारा

ऊपर टूटा तारा, मेरा मन भीतर भर आया।
आसमान में यह तारों की
संख्या ज्यों की त्यों है,
खोया एक सितारा फिर भी
आती कमी न क्यों है ?
बुझा एक दीपक अचरज है क्षितिज नहीं घबराया।
लहरों के उठने गिरने में
गति है और चपलता,
एक लहर टूटे बिखरे भी
तो यह क्रम कब रुकता ?
लहरों के बनने मिटने पर सिन्धु नहीं अकुलाया।
जीवन तो है आना जाना
गति चलती रहती है,
जाने वाले की गाथा बस
धूल सिसक कहती है,
जाने वाले राही को कब पथ ने है ठहराया ?
ऊपर टूटा तारा मेरा मन भीतर भर आया।

घरौंदे

वचपन में वनाये थे
घरौंदे जिन हाथों से
उन्हीं से वे मारे के सारे
मिटाये भी–
केवल वह खेल था।
किन्तु आज
अपने उस खेल पर
मन घबराता है,
अन्दर से घुटता
उफान आ जाता है,
क्योंकि आज
सारे के सारे घरौंदे वे
वन गये प्रतीक हैं।
सृष्टि में इसी तरह
वनने विगड़ने के क्रम क्या निरर्थक हैं ?
अथवा ये ठीक है ?

एक दिन यह और बीता

एक दिन यह और बीता सोच मन घबरा रहा है।
ज़िन्दगी का नाम चलना
चल रही दुनिया बराबर,
श्वास की बूंदे लुटाकर
ढल रही दुनिया बराबर;
चरण गति की डोर में बँध
पंथ की लीकें बनाते,
छोर मंजिल के, कुहासे–
में लिपटते दूर जाते;
किस नदी का जल यहाँ रुक कर भला ठहरा रहा है?
एक दिन यह और बीता सोच मन घबरा रहा है
सांझ की कालिख अजब है
आग का गोला भुलाया,
रात ने झुककर नयन में
स्वप्न का जादू चलाया;
भ्रमर का उत्पात मधुवन
में सदा पतझार लाता,
फूल का कन-कन झकोरों
में विवश हो बिखर जाना;
समय की किस कोर को छू, प्राण भी पथरा रहा है?
एक दिन यह और बीता सोच मन घबरा रहा है।

मेघ काले घिर रहे हैं
छा रही कैसी खुमारी,
आँख में भरती उदासी
यह क्षितिज की स्याह भारी,
रेत की तह पर लकीरें
जो खिंची उभरी रहीं वे,
पर्त स्मृति के खुले हैं
अश्रु की बूँदें नहीं ये ;
मन चपल नादान शिशु सा गिन्तियाँ दुहरा रहा है ।
एक दिन यह और बीता सोच मन घबरा रहा है ।

साल बीतने पर

अरे ! यह साल भी बीता।
अरे ! यह साल भी बीता।

सुबह जागी चली आगे
समाई सांझ के अन्दर,
कटे हफ़्ते बड़ी जल्दी
दिनों के नाम में घिर-घिर।
महीनों के फटे कागज़
बराबर हर कलेंडर पर,
हुआ जाड़ा हुई गर्मी
लगा बरसात का चक्कर;
समय तो नापता अपने
क़दम ले हाथ में फ़ीता।
सफ़े हैं तीन सौ पैंसठ
बनी मोटी बही यह तो,
सभी के मूलधन औ' ब्याज
को टाँके रही यह तो,
सफ़े सब सरसरी सी दृष्टि
से देखे अभी मैंने,
चुभे हैं आज आँखों में
गणित के अंक यह पैने;

समय का कर्ज़ बढ़ता है
यही सब सोच मन रीता।

समय की भव्य सी मीनार
की यह एक सीढ़ी है,
इसी पर घूम फिरकर चढ़
रही हर एक पीढ़ी है,
दुखों का यह अँधेरा छा
रहा मीनार के अन्दर,
सुखों की ज्योति आती है
झरोखों से यहाँ छनकर;
नयन नक्काशियों में खोजते
है चित्र मन चीता।

अरे! यह साल भी बीता।
अरे! यह साल भी बीता।

परिणति

ज़िन्दगी सरिता, समन्दर मौत है
एक दिन मिलना इसी में है।

श्वास की बाती, सकोरा देह है
आयु को घुलना इसी में है।

हर्ष के ये फूल, काँटे दुःख के
प्राण को खिलना इसी में है।

अनबिँधे मोती, रुपहली आब है
आँख को धुलना इसी में है।

राह चक्करदार, मंज़िल दूर है
प्रगति को पलना इसी में है।

रोशनी दिन की, अँधेरा रात का
समय को ढलना इसी में है।

कसौटी

काली कसौटी यह
बहुत-बहुत छोटी यह
गहने यह तोलती
भेद को टटोलती
छूकर बताती है
चीज़ खरी खोटी यह ।

परख बतलाती है
बहुत काम आती है
भला बुरा जानती
सब कुछ पहचानती
सही माल देखकर
तुरत मुस्कराती है ।

चीज़ों को जाँचना
मिलावट को भाँपना
बहुत बड़ा काम है
वैसा ही नाम है
पर है सचाई तो—
किसी से क्या काँपना ?

मडगार्ड

बिना मडगार्ड का पहिया
जभी चलता
बड़ी कीचड़ उछलती है ,
अगर हो खुश्क मौसम
तो बहुत ही–
धूल उड़ती है,
सड़क पर चल रहे जो भी
उन्हें यह बहुत खलती है ।

न उछले गंदगी यह
इसलिए
मडगार्ड का होना ज़रूरी है,
बिना मडगार्ड पहिये की–
बनावट भी अधूरी है ।

गायक से—

गायक! बस इतना स्वर खींचो, टूट न जायें तार।
लोहे के पतले रेशों में
ध्वनि सिमटी रहती है,
झनकारों के साथ गीत की
कड़ी कड़ी बहती है,
आरोहों-अवरोहों में ही बँधा हुआ उर-भार।
गायक! बस इतना स्वर खींचो, टूट न जायें तार।
वर्षा-ऋतु में यह सरितायें
नागिन-सी लहराती,
चंचल लहरों की ठोकर से
तट की भूमि ढहाती,
फिर भी धारा को समेटने बनते नव कगार।
गायक! बस इतना स्वर खींचो, टूट न जायें तार।
शान्त सिन्धु में आसमान की
प्रतिछाया पड़ती है,
चाँद और तारों की माला
पानी में सजती है,
यह परछाईं खण्डित होती, जब जब उठता ज्वार।
गायक! बस इतना स्वर खींचो, टूट न जायें तार।

मनमानी गैल

मनमानी ले कर गैल सदा दीवाने चलते हैं।
बंधन को बंधन मान नहीं लेते,
झोली फैला कर दान नहीं लेते,
अपनी लीकें ख़ुद आप बना कर ही–
वे छूते है वे ठौर जहाँ तूफ़ान मचलते हैं।

दुनियाँ का यह बाज़ार चला करता,
मँहगाई होती भाव कभी गिरता,
हाथों में अपनी एक तराज़ू ले–
वे रखते ऐसे बाँट समय के मूल्य बदलते हैं।

ख़ुशबू कब सीमा में घिर कर रहती ?
सरिता तो उद्गम से आगे बहती;
पैने शर से अपनी गति में तन्मय–
वे लक्ष्य बेधने प्रत्यञ्चा से दूर निकलते हैं।

ऊँचा माथा अंबर तक को साधे,
सूरज की किरणों का सहरा बाँधे,
हिमगिरि से अपना दाह स्वयं पीते–
सुरसरि का देने दान धरा को प्राण पिघलते है।

मैं नत हूँ

चमकते तारे सभी हैं
टूटते तारे कभी हैं
अटल निज ध्रुव बिन्दु से जो पथ दिखाता एक तारा
मैं उसी के सामने नत हूँ ।

हर लहर में अथक गति है
औ' भँवर में पूर्ण यति है
एक टूटी नाव को जिस वेग ने तट पर उतारा
मैं उसी के सामने नत हूँ ।

ज्योति की महिमा असीमित
तिमिर की जड़ता अपरिमित
किन्तु धुँधली दृष्टि को जो भी किरन देती सहारा
मैं उसी के सामने नत हूँ ।

जीत में आरोह कितना
हार में अवरोह उतना
चूर होती आस्था को जिस हृदय ने भी पुकारा
मैं उसी के सामने नत हूँ ।

बोझिल आँखें

बोझिल आँखें उलझा-सा मन,
बिन बरसे ही बादल बिखरे !
कजरारे मेघों का जादू छल कपट किए मन को घेरे
धरती की प्यासी आँखों के आगे मृग-तृष्णा के फेरे,
बनते मिटते ये धुंध धुएँ के
खेल मुझे कितने अखरे !
ऐसे भी थे घन जो धरती के कन कन पर पानी बरसा
गलते मोती की थाती पा अंकुर-अंकुर का मन हुलसा,
उस दिन रोया था गगन और
रंगीन चित्र कितने निखरे !
यह उमड़ घुमड़ मंथन का कैसा रूप अरे! अलबेला है
बिजली की पैनी चमक-दमक से अम्बर अब तक खेला है,
दो बूँदें बाहर बह न सकीं
दुहरे दृग-पथ कितने सँकरे !

एक मनःस्थिति

जागे कैसे ये गीत, हो गई मन की पीर नई।
कोई खारी तूफ़ान उठा
मथन यह कैसा है ?
बालू पर खिंची लकीर, लहर
का कंपन ऐसा है ;
घबराकर लौटी दृष्टि कूल की रेखा कहाँ गई ?
यह कैसा पैना दर्द लिये
बहती पुरवाई है ?
बरखा की मस्ती ने धरती
की सुंध दबाई है ;
रिमझिम सी झरी फुहार, घटा वह सावन की आई।
बेसुध बिजली कौंधी कितना
पर कहीं नहीं ठहरी ,
ले एक बूँद का दाह, नखत
ये निशि भर के प्रहरी ;
गुत्थी कितनी अनसुलझ , सूत जो उलझे कई कई।
जागे कैसे ये गीत, हो गई मन की पीर नई।

सभी मिट्टी के खिलौने

सभी मिट्टी के खिलौने
टूट जाते हैं,
और प्याले कांच के भी
फूट जाते हैं,
है कहाँ ऐसा खिलौना
और प्याला जो न टूटे ?
है कहाँ नक्षत्र वह
जिसको सवेरा आ न लूटे ?
मृत्यु की ठंडी शिला पर प्राण गलते हैं।

कौन सी धारा जहाँ
लहरें न उठती ?
हर कली की पँखुरियाँ
चुपचाप झरती,
कौन से वे दृग जिन्होंने
एक भी सपना न देखा?
कौन सी हैं अँगुलियाँ
जिनने न खींची चलित रेखा ?
समय की मँझधार में दिनमान ढलते है।
ज़िन्दगी का नियम है
अविराम चलना,

राह कोई हो न हो
है किन्तु बढ़ना,
मरणमय वे चरण जो
चलना न जाने,
अचल है वह धार जो
बहना न जाने,
श्वास की संकरी डगर पर प्राण चलते हैं।

दृष्टि सीमित नाप
लेती विश्व सारा,
क्षीण दुर्बल लहर
छू लेती किनारा,
यह क्षितिज की कालिमा ने
बाँध ली क्यों सृष्टि सारी ?
हम न पर सीमित, न
सीमित गति हमारी,
मंजिलें उस पार की छूने मचलते हैं।

बीत जाता युग, बना
इतिहास रहता,
हृदय का हर कम्प
बीती बात कहता,
बालुका के शुष्क तट पर
हर लहर का चित्र खिचता,
दृढ़ शिला पर समय की
मानव सबल निज चरण रखता,
चरण के ये चिन्ह बनकर दीप जलते हैं।

मुक्तक

गहरा सागर मन डूब रहा उतराता भी ;
बादल उठते, पर कुहरा कुछ छितराता भी ;
यह आँख-मिचौनी ज्योति और काले तम की-
विश्वास सजग, लेकिन यह मन घबराता भी ।

है बहुत बड़ा सागर फिर भी यह खारी है ;
गहरे पानी में सुलग रही चिनगारी है ;
यह आग और पानी का खेल चला करता-
जलना-बुझना कुछ नहीं एक लाचारी है ।

यह फेन और बुलबुले थाह लेते सागर ;
हैं स्वप्न नहीं कुछ और एक रीती गागर ;
क्या सत्य और क्या भ्रान्ति कौन यह पहचाने-
यह भरा-भरा संसार खोखला है अन्दर ।

सूनी गलियाँ

जीवन की सूनी-सी गलियाँ
कुछ कह देती कुछ सुन लेतीं।
अनजान डगर टेढ़ी मेढ़ी
पथ के काँटे हैरान किए,
कंकरीले पत्थर की नोकों ने
तलुवे लहू-लुहान किये,
झुरमुट में मुस्काती कलियाँ
कुछ कह देती कुछ सुन लेती।
मन मुरझाकर थकता जाता
पैरों की ताक़त टूट रही,
उसको बहना ही है लेकिन
तट से जो नौका छूट गई,
चंचल लहरों की रंग-रलियाँ
कुछ कह देती कुछ सुन लेती।
अपने गीतों की गुनगुन में
सूनेपन का पहरा छंटना,
फ़ासला सफ़र का तय होना
कन्धों पर का बोझा घटना,
उड़ते विहगों की मण्डलियाँ
कुछ कह देती कुछ सुन लेती।
जीवन की यह सूनी गलियाँ
कुछ कह देतीं कुछ सुन लेती।

नया पल

बरसते सदा मेघ, आकाश धोते—
धनुष एक उगता लिए सात धारी,
सुबह-शाम ही वक्र आकार जिसका
क्षितिज का शरासन ढँकी सृष्टि सारी ;
नया पल नयी ही चमक ढूँढ लाता—
समय के धनुष में भरे रंग कितने ?

घड़ी, पल, क्षणों में बँधा काल चलता
समय की प्रगति तो बहुत सम बनी है,
इसे चीरकर ही नया युग उभरता—
नयी ज्योति नूतन दिशा का धनी है ;
नये पृष्ठ आकाश को चूम लेते—
समय का धरातल उठे शृंग कितने ?

जले स्वर्ण दीपक हुई पंक्ति जगमग
निशा के अधर पर किरण ज्योति छाई,
बुझा एक दीपक कसक छोड़ता-सा
मगर पंक्ति में तो कमी कुछ न आई,
बचे जो नखत मुस्कराते रहे वे
समय के स्वरों में छिपे व्यंग कितने ?

मधुर स्वप्न ने ही चुने शब्द सुन्दर—
सुखद कल्पना बाँधती क्रम सलोना,
चरण चाप में ही प्रगति बँध गई है
विषय है दिशा का अरे ! तीक्ष्ण कोना :
कहाँ श्वास का अर्थ पूरा हुआ पर—
समय का प्रवह छन्द, यति-भंग कितने ?

प्रशस्ति काव्य

देख लो ! वे कौन
बैठे हैं तख्त पर,
बहुत हँसमुख देखने में
हैं सख़्त पर ,
बात करने में बड़े दिल के
इन्हें है शान अपने दस्तखत पर ,
क्यों कि हुंडी और ये प्रोनोट
कितने ही भुना देते वख़्त पर ।

इन्हें इन्सानियत के बीच का
पाया समझिये,
दुखी औ' त्रस्त मानव का
इन्हें साया समझिये,
पड़े यदि कर्ज ही लेना
बहुत ये काम आते है,
न चिन्ता मूलधन की कर इन्होंने
सूद ही खाया समझिये ।

ये बड़े ज्ञानी
कि ये परमार्थ का पहिया घुमाते हैं,
कहीं धरती न हिल जाये
इसीसे धर्म की तीली जमाते हैं,

हवेली में उन्हीं की
पूर्णिमा औ' हर अमावस को कथा होती,
बड़े ही भक्त हैं
ये मन्दिरों की भीड़ में धँसकर समाते है।

बड़े पुरुषार्थी है ये
स्वयं भगवान को बन्दी बनाते हैं,
कि उसके सामने लड्डू कभी हलवा
कभी ये खीर लाये हैं,
कभी तो शंख बजवाते
कभी हारमोनियम पर भजन सुनते हैं,
न मिट्टी के, न पत्थर के
उन्हें तो बस सुनहरे गीत भाये हैं।

अगर होते न ये तो
सच कहें सब भूख से मरते,
कहीं पर धान्य घुन जाता
कहीं आलू सड़ा करते,
कहीं पर ब्याह रुक जाते
कहीं से लौटकर बारात ही आती,
बिना इनके कहे क्या
सृष्टि के सब पुण्य ही मरते।

विनम्र निवेदन

मेरी वाणी प्रशंसा में रता
क्योंकि सचमुच प्रशंसनीय आपकी सहृदयता;
मिट्टी में दबे हुए बीजों को देख आप
करुणा से भर-भर जाते हैं,
चिन्तित है इसीलिए कैसे यह दबे हुए बीज
भला साँस ले पाते है?
मेरा यह विनम्र-सा निवेदन है
इनको कुरेदें मत, रहने दें ऐसे ही,
अपने दुर्भाग्य और अपने अभिशाप तले
पिसने दें ऐसे ही,
वैभव मे पली हुई आपकी अँगुलियाँ यह
मिट्टी हटाने में व्यर्थ कष्ट पायेंगी,
बीजों को बचाने में अहित आपका है यह
तिनकों की नोकें छिद जायेंगी;
अतः यह छोटी सी विनती स्वीकारें आप !
इनको बस रहने दें ऐसे ही
इनकी अब नियति मे न हारें आप !

पानी के बादल

अपनी ही करुणा से
अपनी ही ममता से
बोझिल हैं,
पानी के बादल ये,
भरी भरी आँखों मे फैल गये काजल से
पानी के बादल ये।

नीलम के आँगन में
उमड़-घुमड़ आये ये,
धरती की तपन देख
बहुत अकुलाये ये,
रह रह कर फूट पड़े, मिट्टी के आंचल में
पानी के बादल ये।

अपने ही मंथन में
ऊब-डूब छाये ये,
फैले विस्तार बीच
बहुत भरमाये ये,
पैना-सा दर्द लिए, डोल रहे पागल से
पानी के बादल ये।

पुरवा के झोंकों मे
बेबस लहरायें ये,

कहीं हुए सघन और
कहीं छितराये से,
छोरे से छूट गये बूँदों की साँकल से,
पानी के बादल ये।

इन्द्रधनुष

नभ में उग आई लो !
रंग भरी रेखा एक टेढ़ी सी
जिसको हम इन्द्रधनुष कहते हैं ।

उमड़ घुमड़कर अभी
बादल ये बरसे हैं
महक उठी धरती
और फूल पत्ती पौधे
सब सरसे हैं ।

जीवन में इसी तरह
दुःख की घटाओं का अँधेरा है,
इसके भी पीछे शायद
रंगों का घेरा है ।

एक इसी आशा के तर्क पर
दुःख और दाह हम सहते हैं,
जीवन में इसी आकर्षण को
इन्द्रधनुष कहते हैं ।

काई

अजब बदरंग सा फैला अरे ! यह जम गई काई,
कठिन है सँभलकर चलना बहुत फिसलन यहाँ आई,
ढकी इसने नरम मिट्टी, पकी ईंटें, कड़े पत्थर
तरल जल की सतह पर भी विकृति की पर्त यह छाई।

ज्योति की चाह

अंधेरा बहुत, ज्योति की चाह है।
लिया सूर्य को लील
गहरे तिमिर ने,
नखत जगमगाये
निशा के शिविर में,
मगर दीप इतने नहीं पी सके तम
बड़ी बेबसी, खो गई राह है।

गुफ़ा कालिमा की
निगलती चराचर,
गरम साँस यह
काँपती-सी बराबर,
गगन पर किरण-मालिका तिलमिलाती
घुटन बढ़ रही, मृत्यु सा दाह है।

लगी आँख, सपने
बहुत रँग दिखाते,
खुली आँख सपने
स्वयं टूट जाते,
धुली कल्पना जब हुई दृष्टि धूमिल
बहे रंग, ख़ाका हुआ स्याह है।
अँधेरा बहुत, ज्योति की चाह है।

मुक्तक

तैरते तिनके, झुलाती धार है,
डूबता कंकड़ बहुत लाचार है,
कौन भारी और हलका कौन है?
तोलना ही लहर का व्यापार है।

बहुत उफनाता जलधि का ज्वार है,
किन्तु बहने का नहीं अधिकार है,
जो बहुत गहरा, वहीं मन्थन बहुत–
और वह गहरा जहाँ पर क्षार है।

फूल क्या है? गन्ध का आकार है,
वायु बिखराती जिसे हरबार है,
साँस है पंछी घरौंदा देह है–
तोड़ देती समय की बौछार है।

गूँज उसमें बस कसा जो तार है,
वेदना ही रागिनी का सार है,
स्वाति की जो बूँद प्यासे को मिली–
आँख का मोती वही आभार है।

दो सांध्य-गीत—१

घिर घिर आई साँझ, हुआ मन बोझिल और उदास।
देख क्षितिज की रेखा आगे
सहम गया यह सूरज,
खुलीं दिशायें काली पड़तीं
किस टोने का अचरज?
सिमट रही गुमसुम सी धरती, सिमट रहा आकाश।
मन में भरी उमंग, विहग ने
आधा अम्बर नापा,
कुहरे का यह उठा बवन्डर—
देख हृदय पर काँपा।
रुँधी रुँधी सी दृष्टि, उठा पंखों पर से विश्वास।
आसमान के श्याम पटल पर
यह तारों के अक्षर,
आड़े-तिरछे बिखरे कैसे
सारे व्यंजन औ' स्वर,
अनजानी अँगुली करती है लिखने का अभ्यास।
घिर घिर आई साँझ, हुआ मन बोझिल और उदास।

२

हो गई साँझ, बोझिल मन के ये गीत मेघ वनकर छाये ।
झुटपुटा हुआ हो रहीं दिशायें कजरारी,
बाँधे है मारी धरा एक काली धारी,
धूमिल नभ के धुँधले पट पर भी कितने रंग उभर आये ?
मेघों को चीर उधर सहसा बिजली कौंधी,
नम बूँदों मे सिँच हुई धरा सोंधी सोंधी,
उमड़े घुमड़े अपने ही मंथन से ये बादल अकुलाये ।
लय हुई साँझ निशि के अँधियारे में भूली,
तन्द्रा की बाहों में धरती बरबस झूली,
कोई पाती ले नयनों में सपनों के हंस उतर आये ।
हो गई साँझ, बोझिल मन के ये गीत मेघ बनकर छाये ।

सुरमई वेला—

साँझ की यह सुरमई वेला
अकेला मन
सहारे के लिए
कोई धुरी या केन्द्र कोई चाहता है।

यह उदासी में दबी धरती
कुहासे में ढका आकाश
जड़ता में धँसी बोझिल दिशाएँ
और तन-मन को समेटे साँझ की यह साँवरी छाया
क्षितिज की डोर में उलझी हुई आँखें
पलक की छाँह में कोई अदेखा ज्वार उफनाया।

छिपा कोई चितेरा है
न जिसकी तूलिका दिखती
न रंगों के सकोरे ही
मलेटी रंग का यह 'वाश' भर फैला हुआ है;

कौन-सी वह भाव-मुद्रा आँक देगा
कौन-सा सौन्दर्य या वह टाँक देगा
है नहीं कुछ ज्ञात
कैसी कल्पना इस पर उतारेगा?
कैसी भावना या वह सँवारेगा?

वह अभी तो
यह सलेटी रंग गहरा, और गहरा–
और गहरा कर रहा है।

कुछ ठहर कर
इस कला के सिद्ध साधक ने
सुनहरे रंग में कूँची डुबोकर
कालिमा के बीच में धब्बा लगाया,
और वह धब्बा सुनहला
रात का पहला नखत बन सामने आया,
भटकती सी दृष्टि को
उजला सहारा मिल गया;
कालिमा के बीच––
यह लो! केन्द्र पैना खिल गया।

छलना

गहरे से रंगों का
पर्दा लो उठता है,
मञ्च पर नाटक का
इन्द्रजाल चलता है,

इधर-उधर से
ये पात्र निकल आये हैं,
अवसर के अनुकूल
हाव-भाव लाये हैं,

इनकी सचाई पर
'मेक-अप' की पर्तें हैं,
दिया हुआ पार्ट
अदा करने की शर्तें हैं,
दृष्टि यह बाँधे हैं
अन्तर के तारों को साधे हैं।

डालती है जन्तर-सा
फूँकती है मन्तर-सा,
अभिनय की माया है–
अभिनय की छलना है,
मैं तो हूँ दर्शक तटस्थ मात्र,

फिर भी इन दृश्यों में–
क्यों कर यह वहना है ?
क्यों कर कलपना है ?
अभिनय की छलना यह !

समर्पण

अनायास !
मेरी बद्ध अञ्जलि यह
समर्पित है अनायास !
काले-मटमैले और भूरे इन मेघों को,
छहर घहर मेघों के बीच में
चमकती हुई चपला को,
रिमझिम कर झरती हुई
वर्षा की नन्हीं फुहारों को,
मेरी बद्ध-अञ्जलि यह समर्पित है अनायास !

मेघों की उमड़-घुमड़
अनगिन मयूरों के
पंखों में, उर में उमंग हुलसायेगी;

बिजली की पैनी सी रेखा यह
घटाटोप तिमिर चीर
ज्योति का सँदेशा कह जायेगी;

वर्षा की नन्ही-सी बूँद एक
मिट्टी के कण-कण में
प्राणवान अंकुर उगायेगी;

इसीलिए—
मेरी बद्धअञ्जलि यह समर्पित है
बादल को
बिजली को
वर्षा की बूँदों को . . .

प्रेरणा-गीत

राह बोझिल न हो गुनगुनाते चलो !
पंथ सूना न हो मुस्कराते चलो !

यह समय का समन्दर बहुत ही अगम
तिर रहीं किश्तियाँ है असंख्यों यहाँ,
हर लहर का थपेड़ा बना है प्रगति—
कौन जाने कि वह छोर होगा कहाँ ?
एक किश्ती अभी डूबते से बची
दूसरी को भँवर खींचती जा रही,
एक माँझी सहम-सा गया देखकर
धैर्य की भीति भीतर न टिक पा रही,

छूट जाए न पतवार भी हाथ से
छप-छपा-छप, छपा-छप सुनाते चलो !

रात की नागिनी में बहुत विष भरा
डस लिया रोशनी का सुनहरा बदन,
देखती रह गई अनमनी-सी धरा
देखता रह गया अनमना-सा गगन,
सुन्न-सी पड़ गई है दिशाएँ सभी
दर्द की यह लहर तिलमिलाने लगी,
आँख सोई कहीं आँख रोई कहीं
वेदना हो विकल गीत गाने लगी,

कालिमा चीर किरणें उभरती रहें
स्नेह के दीप सौ-सौ जलाते चलो !

दर्द दिल पर जमा जब बहुत ठोस हो
कण्ठ से ख़ुद-ब-ख़ुद रागिनी फूटती ,
एक चट्टान जम कर हुई बर्फ़ तो–
दाह से पुण्य–स्रोतस्विनी फूटती ,
मेघ गीले बरस जब बहुत रो चुके
एक रंगीन रेखा उभरने लगी ,
ओस की बूँद का जो सहारा मिला
ज्योति की राशि नीचे उतरने लगी ,

आँख की पाँखुरी में बहुत है नमी
गन्ध-केसर धरा पर लुटाते चलो !
राह बोझिल न हो, गुनगुनाते चलो
पंथ सूना न हो मुस्कराते चलो !

अपेक्षा

ये बड़े प्रासाद ऊँचे--
ईंट-चूने और गारे से बने
मुझको अपेक्षित ही नहीं है।

प्रलय के दिन--
ये बड़ी गुरुतर शिलाएँ
गगनचुम्बी भव्य-सी अट्टालिकाएँ
और गहरी नींव पर ठहरी हुई दृढ़ भीतियाँ ये
उस प्रलय की बाढ़ में चुपचाप बेबस डूब जाएँगी।

है नहीं विश्वास महलों का, दुमहलों का
भरोसा नाव का मुझको बड़ा है
क्योंकि तिनकों से बनी यह जीर्ण नैया
प्रलय के उस सिन्धु में भी मुग्ध हो तिरती रहेगी।

गहरा कुआँ समय का

गहरा कुँआ समय का साथी !
थाह नहीं मिल पाती ;
श्वासों की मापक डोरी में
गाँठ कहाँ जुड़ पाती ?
आकृति की गोलाई में गति
घूम घूम बँधती है ;
गहराई के आकर्षण में
सब दुनिया खिंचती है ,
मेरे स्वर की प्रतिध्वनि पर तुम
डूब डूब उतराना !
सीमा से टकराना !
तल में मत खो जाना !

उधर समय के देखो ! साथी !
कैसे मेघ उमड़ते ?
घड़ी और पल की रिमझिम में
कहीं विराम न लगते ,
सुन्दर सुन्दर चित्र इसी में
धुलधुल कर मिट जाते ,
जितने रंग भरे थे इनमें
वे बहकर छुट जाते ,

मेरी प्रतिलिपि की रेखा तुम
उभर उभर उठ आना!
नया अर्थ दुहराना !
बदरँग मत हो जाना !

लंबी राह समय की साथी !
बहुत घना अँधियारा,
और घड़ी के दो काँटों से
बिँधा हुआ पथ सारा ,
विघ्नों की झंझा झोंके ले
सब प्रकाश पी जाती,
अन्धकार को उगल, पुरानी
लीकें सभी मिटाती ,
गति के वाहक ! निर्भय होकर
नयी राह लिख जाना!
गहरे चिह्न बनाना !
तम में मत सो जाना !

क़लई

नाम है क़लई
तुम्हारा काम बस चढ़ना उतरना।
चढ़ो तुम तो किसी भी पात्र पर
कितनी चमक आती,
पुरानापन कहीं जाता
नयेपन की दमक आती,
पुराने को नया करना
नयेपन में बहुत हँसना
हँसाना दूसरों को भी
तुम्हारा काम यह कैसा
बड़े परमार्थ का शायद
बड़े उपकार का शायद ?

मगर कुछ चन्द दिन में
चमक सब ख़ुद ही उतरती है,
तभी सब लोग कहते
देख लो क़लई उतरती है।
पुराने पर नयी रंगत
मगर क्या मूल्य बढ़ पाया कभी भी ?
मुलम्मा एक परिभाषा बनी है
छल कपट धोखा धड़ी की।

भ्रान्ति

विहग, तुमने नाप ली धरती
तुम्हें मेरी बधाई !
और नभ भी छू लिया है
इसलिए दुहरी बधाई !

उड़ रहे हो उस अगम विस्तार में
धरती जहाँ से दिख रही है ,
गगन में कुछ गीत अपने
गति तुम्हारी लिख रही है ,

लग रहा जैसे कि–
धरती और नभ दोनों तुम्हारे है ,
मुक्त फैली सी दिशाओं के
छुए तुमने किनारे हैं ,

किन्तु ये ऊँचाइयाँ हैं कुछ नहीं
बस छल लिया तुमको–
तुम्हारी भ्रांति के फैलाव ने;
दूर धरती हो गई, नभ दूर अब भी
ढक लिया है दृष्टि को
इस खोखले अपनाव ने ।

दु:ख क्या ?

फूल-सा मन मिले, प्राण की गन्ध झर-झर बिखर जाय,
तो दु:ख क्या ?
मेघ-सा मन मिले; आर्द्र करुणा धरा पर छहर जाय,
तो दु:ख क्या ?
धार-सा मन मिले; सिन्धु की थाह पा गति ठहर जाय,
तो दु:ख क्या ?
प्रात-सा मन मिले; छू जिसे तम-पटल सब उघर जाय,
तो दु:ख क्या ?
वायु-सा मन मिले; पार पर नाव कोई उतर जाय,
तो दु:ख क्या ?
चाँद-सा मन मिले; ज्योति की डोर से भू सँवर जाय,
तो दु:ख क्या ?
सीप-सा मन मिले; अनबिँधा एक मोती उभर जाय,
तो दु:ख क्या ?
दीप-सा मन मिले; पंथ की भ्रांति कोई सुधर जाय,
तो दु:ख क्या ?
शैल-सा मन मिले; दाह से पुण्य धारा लहर जाय,
तो दु:ख क्या ?
शून्य-सा मन मिले; द्वन्द्व सारा जहाँ पर सिहर जाय,
तो दु:ख क्या ?

एक चतुष्पदी

एक काली डोर में अम्बर घिरा
बंधनों में जीर्ण है सारी धरा
पाँखुरी ने तो बहुत बाँधा मगर-
गंध ने माना नहीं यह दायरा।

आग्रह

सिन्धु तुम खारे रहो
क्योंकि यह खारापन तुम्हारा व्यक्तित्व है !
संभव है—
तुम में यदि न होता यह खारापन
तो तुम तालाब या नदी ही सिर्फ़ बनते,
या फिर तुम कुँआ बने
सीमित सी परिधि बीच निज में ही घुनते,
किन्तु यह क्षार ही तुम्हारी गहराई है
क्षार ही में फैली तुम्हारी विशालता है ,
क्षार के ही कारण गंभीरता मिली है तुम्हें
क्षार ही तुम्हारी मर्यादा है, उदारता है ।
देखो तो, नदी और नदों ने भी बह बहकर
तुमको ही अर्पित किया अपना अस्तित्व है !
सिन्धु तुम खारे रहो
क्योंकि यह खारापन तुम्हारा व्यक्तित्व है !